कांग्रेसका जन्म

— और —

: : विकास

लेखक—

सिद्धनाथ माधव लोंढे, आगरकर

प्रकाशक—

बैजनाथ केडिया

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता

प्रथमबार] सं० १९७८ [मू० ≡)

मैं निरोग हूं या रोगी ?

यह जाननेका सबसे अच्छा साधन। डाक्टर, वैद्योंके फन्देमें पड़े विना नीरोग रहनेका सहज उपाय। जर्मनीके प्रसिद्ध जलचिकित्सक कूने साहबकी पुस्तकका अनुवाद। मूल्य ।)

भारतकी साम्पत्तिक अवस्था।

ले० प्रो० राधाकृष्ण झा, एम० ए०

यह पुस्तक भारतके आये दिनके अकाल, दरिद्रताका हाल, भारतकी सम्पत्तिको विलायतके कोठीवालोंके ढो ले जानेकी चाल, कर, एक्सचेंज़, सोना, चांदी, हुंडीकी बिक्री, उसकी नीति, उससे हमारे दिन प्रतिदिन गरीबीके गढ़ेमें गिरते जानेकारो मांचकारी वर्णन, वाणिज्य, मजदूरों, किसानोंकी अवस्था तथा वाणिज्य व्यापार संबंधी सरकारी नीति इत्यादि जाननेका सर्वोत्तम साधन है। **प्रो० यदुनाथ सरकार** सरीखे महानुभावका कहना है **भारतकी किसी भी भाषामें ऐसा उत्कृष्ट और उपकारी ग्रन्थ अबतक नहीं छपा।** मूल्य ३॥)

खाद

लेखक—श्रीयुत मुख्तार सिंह वकील

हिन्दीके प्रसिद्ध साप्ताहिक "**अभ्युदय**"की सम्मति

प्रस्तुत पुस्तकमें खादोंके भेद तथा भिन्न भिन्न अन्नोंके लिए कौनसी खादकी आवश्यकता होती है इसका उत्तमताके साथ वर्णन है। प्रत्येक कृषक तथा कृषिप्रेमियोंको अवश्य पढ़ना चाहिये। मू० १)

विक्रय कला अथवा माल बेचनेकी रीति

लेखक—**गंगाप्रसाद भोतिका** एम० ए० बी० एल० काव्यतीर्थ

विज्ञापन देने, ग्राहक पटाने, थोक व्यापारीसे, दलालसे तथा अन्य रीतिसे मालकी बिक्री बढ़ानेके नये नये ढंग। मू० ॥)

प्रारम्भिक

आगेके पृष्ठोंमें, मर्यादित स्थानमें, कांग्रेसके जन्म और विकासका इतिहास दिया गया है। कार्य-कारण परम्पराका ध्यान रखकर ही इसकी बातें लिखी हुई हैं। दिये हुये अवतरण और अंक प्रमाणिक हैं। आधार-भूत पुस्तकोंकी लम्बी फेहरिश्त देकर एक पृष्ठका स्थान रोकना उचित नहीं समझा गया; तथापि उत्तम पुस्तकोंके प्रणेताओंके प्रति धन्यवाद प्रकट करना आवश्यक है। विचारों और दलीलोंके भूलोंकी सारी ज़िम्मेदारी मेरी है।

जबलपुर
२ दिसम्बर १९२१

विनीत—
सिद्धनाथ

कांग्रेसका जन्म और विकास।

कांग्रेसके जन्मके पूर्व।

अङ्गरेज़ोंके बाप दादे सन् १६०० ई० में हिन्दुस्तानके कराची बन्दरमें व्यापार करनेके लिये आये थे। उस समय उनके पास तराजूके सिवा और कुछ न था। हिन्दुस्तानकी तारीफ़ सैकड़ों वर्षोंसे विलायतके लोग सुना करते थे। तरह तरहकी बातें वहां फैली हुई थीं। पुर्तगालवालोंका अनुकरण कर हालैंड तथा फ्रान्सके लोगोंने भारतके साथ व्यापार करना आरम्भ कर दिया था। हिन्दुस्तानकी बनी हुई सुन्दर और बहुमूल्य चीज़ोंको देखकर अङ्गरेज़ोंको भी हिन्दुस्तानके साथ व्यापार करनेकी लालसा हुई। सन् १५९९ ई० में एक ऐसी घटना हुई जिसने उनकी इस लालसाको दृढ़ इच्छामें परिणत कर दिया। हिन्दुस्तानके व्यापार का सूत्र उन दिनों हालैण्ड निवासी डच लोगोंके हाथोंमें था। हालैण्ड और इंगलैण्डके बीचमें २५, ३० मील चौड़ी अंग्रेजी खाड़ी है। अतएव इङ्गलैण्डवाले व्यापारी, मसाले आदि पदार्थ हालैण्डवालोंसे ही खरीदते थे। उक्त सन्में हालैण्डवालोंने काली मिर्चका दाम ३ पेन्स प्रति शिलिङ्गसे बढ़ाकर ८ पेन्स कर दिया। इस घटनासे लन्दनके लोग उत्तेजित हो उठे और ता० २२ सितम्बर सन् १५९९ ई० में लन्दनके लार्ड मेयरकी अध्यक्षतामें सभा की। जिसमें निश्चय किया गया कि "हिन्दुस्थानकी जलयात्रा करनेका साहस किया जाय। ईश्वर इस यात्रामें सफलता प्रदान करे।"

इस साहसमें कितनी सफलता हुई, इस बातको बतलानेकी ज़रूरत नहीं। सोनेकी चिड़िया संपूर्ण रूपमें अंग्रेज़ोंके हाथमें है। इससे बढ़िया पुरस्कार और कौनसा मिल सकता है?

सन् १६०० की ३१ वीं दिसम्बरको इन व्यापारियोंको उस समयकी इङ्गलैण्डकी रानी एलिज़बेथसे १५ सालके लिये हिन्दुस्थानके साथ व्यापार करनेकी सनद प्राप्त हुई। इस सनद में एक शर्त यह थी कि यदि हिन्दुस्थानके व्यापारसे इङ्गलैण्डका लाभ न हुआ तो सनद ज़ब्त कर ली जायगी। इन व्यापारियोंने अपनी जमातका नाम 'इस्ट इण्डिया कम्पनी रखा। कुल २१५ आदमियोंने मिलकर ३०१३३ पौण्ड धन एकत्र करके हिन्दुस्थान से व्यापार शुरू किया। आगे चलकर कुछ प्रतिस्पर्धी जमातें और तैयार हुईं, किन्तु वे सब एक हो गयीं। इस अङ्गरेज़ी कम्पनीने डच और पुर्तगाल लोगोंसे लड़ते झगड़ते रहने पर भी अच्छा लाभ कमाया। सन् १६०० से लेकर सन् १६८३ तक कम्पनीने अपराधियोंको दण्ड देने, टकसालमें सिक्का ढालने और अदालतें स्थापित करनेके अधिकार प्राप्त कर लिये थे। सन १६८८ में कम्पनीने एक प्रस्ताव पास किया जिसका आशय यह था कि व्यापारकी रक्षाके निमित्त हमें फौज रखकर राजनैतिक सत्ता स्थापित करनेकी आवश्यकता है।" इसके पूर्व कम्पनीवाले अपनी दूकानोंकी रक्षाके लिये सौ दो सौ अंग्रेजी चौकीदार रख लिया करते थे किन्तु उक्त वर्षके बाद वे सिपाहियोंको सेना भी रखने लगे। जब कम्पनीकी व्यापारिक सत्ताके साथ साथ राजनैतिक सत्ता बढ़ने लगी तब धीरे धीरे इङ्गलैंडकी पार्लियामेण्टने कम्पनीके अधिकार घटाना शुरू कर दिया।

इस समय कम्पनी हिन्दुस्थानमें साम्राज्य कायम कर चुकी थी, पर उसका साम्राज्य सार्वत्रिक नहीं था। हिन्दुस्थानी राजाओंके राजके अलावा उसकी एक प्रतिस्पर्धी फ्रेंच कम्पनी

भी थी। फ्रेंचकम्पनीने हिन्दुस्थानियोंकी फौजें तैयार की थीं। फ्रेंच सेनापति डुप्लेको नीतिसे लाभ उठाकर अंग्रेज़ी कम्पनीने भी अपनी फौजमें हिन्दुस्थानियोंकी भरती शुरू कर दी थी। मुगल सम्राट औरङ्गज़ेबकी सन् १७०७में जब मृत्यु हो गयी उस समय हिन्दुस्थानमें बड़ी गड़बड़ीसी मची। मुग़ल साम्राज्यके टुकड़े होने लगे। औरङ्गज़ेबके बाद कोई प्रभावशाली सम्राट न होनेसे मुसलमान नवाबों, मराठों, और सिक्खोंने अपना अपना अधिकार बढ़ाया। केन्द्रीय सत्ता टूट जानेसे मुग़ल साम्राज्य शिथल हो गया। इस शिथिलताका लाभ फ्रेंचोंके साथ साथ अंग्रेज़ कम्पनीने भी उठाया। घरसे काफ़ी मदद न मिलनेकी वजहसे फ्रेंचोंको अंग्रेज़ोंसे हार खानी पड़ी। और आपसकी कलहके कारण मुसलमानों, मराठों और सिक्खोंको अंग्रेज़ोंके सामने झुकना पड़ा और अंग्रेज़ी कम्पनीने यह सब बातें किसके बलपर कीं? गोरे सैनिकोंकी शक्तिके बलपर? नहीं।

अंग्रेज़ोंने फ्रेंचोंसे सीखा था कि हिन्दुस्थानी लोग कवायद सिखाये जानेपर अच्छे सैनिक बन जाते हैं। उन्होंने यह भी देखा था कि थोड़ीसी मीठी बात और ज़रासी सुविधाको देखकर हिन्दुस्थानी लोग अपने राजा या नवाबका साथ छोड़ कर अंग्रेज़ोंके साथ रहनेको तैयार हो जाते हैं। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि क्लाइव जैसे चालाकों द्वारा हिन्दुस्थानी लोग ठगे जा सकते हैं। उन्होंने इसे भी ध्यानमें रखा था कि समय पड़नेपर एक आध हिन्दुस्थानी भी जाकर अपनोंसे दगा करके अंग्रेज़ोंके हाथमें बिहार बंगाल और ओड़ीसा समर्पण कर सकता था। तराज़ूसे मिर्ची धनिया सोंठ आदि तौलनेवाली और गज़ोंसे ढाकेकी मलमल नापनेवाली इस बनियोंकी जमातने उपर्युक्त बातोंसे लाभ उठाया और जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, मुगल साम्राज्यकी विरासतके लिए झगड़नेवाले मुसलमानों, मराठों और सिक्खोंको अपनी चालोंसे शिकस्त

देकर हिन्दुस्थानके तख्तपर अधिकार जमा लिया। सन १८५७के गदरके समय लग भग सारे हिन्दुस्थानपर कम्पनीका राज हो गया था। और यह राज २१५ व्यापारियोंकी जमातने* ३६,३७१ अंग्रेज़ी और २, १४, ६८५ हिन्दुस्थानी अर्थात् एक गुना अंग्रेज़ी तथा ५ गुना हिन्दुस्थानी सिपाहियोंकी सहायतासे स्थापित किया था।

सन् १८५८में गदर हुआ। इसके पूर्व, लार्ड डलहौसीकी उग्रनीतिसे सारा भारत घबरा उठा था। व्यापार करनेवाली कम्पनी राज कार्यको भी व्यापारके ढंगपर चलाती थी। विलियम पिट जैसे उदार अंग्रेज़ोंको छोड़कर शेष अंग्रेज़ हिन्दुस्थानको सोनेका अंडा देनेवाली मुर्गीसे अधिक महत्त्वकी चीज़ नहीं समझते थे। 'लोगोंके हित' के लिए राज्य चलानेकी सन् १८३३ वाली बातोंने कम्पनीके डाइरेक्टरोंपर कुछ भी असर नहीं किया था। इस दरमियान, सन १७००में इङ्गलैण्डके निवासियोंने हिन्दुस्थानी कपड़ेका विलायतमें जाना कानूनन बंदकर दिया था। हिन्दुस्थानमें बने हुए जहांजोंमें भरकर विलायत जानेवाले मालपर भी वे लोग बहिष्कारका अस्त्र चलाते थे। हिन्दुस्थानकी कला या धन्धोंकी वृद्धिके स्थानपर उनको इंगलैण्डकी व्यापार-वृद्धिका अधिक खयाल था। इन सब असुविधाओंकी जानकारी धीरे धीरे हिन्दुस्थानके लोगोंमें हो गई थी। लार्ड डलहौसीके जमानेमें कुछ लोग पेशवा और अवधके वज़ीरकी ओरसे वलायत भी हो आये थे। वहाँसे लौट कर उनका असन्तोष और भी बढ़ गया था। डलहौसीकी नीतिसे वज़ीर अवधका राज और नानासाहब पेशवा की पेन्शन, और अन्य कई छोटे मोटे रईसोंको रियासतें और जागीरें जब्त हो गयी थीं। अंग्रेज़ी कम्पनीके कुछ फौजी अफसर अपने धार्मिक

---

* फौजके ये अङ्क १८५७ के हैं।

भावोंके अनुसार देशी फौजोंमें इसाई मत फैलानेका प्रयत्न कर रहे थे*। इसने बारूदमें चिनगारोका काम किया। चरबी लगे हुए कारतूसोंसे सिपाहियोंका कहलानेवाला 'विद्रोह' भभक उठा और उसमें हिन्दुस्थानो राजसत्ता स्थापित करनेकी इच्छा रखनेवालोंके साथ कम्पनीकी राजसत्ता भी जलकर खाक हो गयी।

सन् १८५८में कम्पनीके राज करनेके अधिकार छीन लिये गये और महारानी विक्टोरिया सम्राज्ञी बनी। हिन्दुस्थानी राजाओं और साधारण जनताको सुराज और सुप्रबन्धका विश्वास दिलाते हुए सम्राज्ञीने कहा था—हम अपनेको, अपने भारतीय राज्यके निवासियोंके प्रति उसी कर्तव्यकी ज़िम्मेदारियोंसे बंधे हुए समझते हैं, जो हमारी अन्य प्रजाके प्रति है, और वे ज़िम्मेदारियां, परमेश्वरके आशीर्वादसे, हम ईमानदारी और अपनी अन्तरात्माको साक्षी रखकर निबाहेंगे।

कांग्रेसका जन्म।

सन् १८५८ की शाही घोषणाके अनुसार हिन्दुस्थान अंग्रेजी व्यापारियोंकी कम्पनीके हाथसे निकल कर अंग्रेजी शासन;

---

*Lord Palmerston had, in 1855, expressed a hope, not unlonged for by many, when at the banquet given by the Courts of Directors, he announced that "Perhaps it might he our lot to confer on the countless millions of India a higher and nobler gift than any mere human knowledge"—a gift that with a fervour rising above criticism, English Officers had endeavoured to induce their Sepoys to accept. "I have been in the habit" declared an English Officer in 1857, "of speaking to Natives of all Classes, Sepoys and others, making no distinction, since there is no respect of persons with God, on the subject of our religion, in the highways, cities, bazaars and villages —not in the lines and regimental bazaars."—— British India, by R. W. Frazer, LLB. I. C. S. Page 273.

अर्थात् सम्राज्ञी और पार्लिमेण्टकी अधीनतामें चला गया। कम्पनी-शासनके समय हिन्दुस्थानियोंको कम्पनीसे अधिकार मांगनेकी जरूरत नहीं पड़ी थी, क्योंकि उस समय देशी राजाओंके राज हिन्दुस्थानी बुद्धि, हिन्दुस्थानी पाण्डित्य, हिन्दुस्थानी राजनीति और हिन्दुस्थानी सिपहगिरीकी वृद्धि और व्यवहारके लिए खुले हुए थे। कम्पनीके अन्तिम दिनोंमें धीरे धीरे देशी राज्य नष्ट होते जा रहे थे। गदरके पूर्व 'नष्टीकरण' प्रथा पूर्णता को प्राप्त हो गयी थी। इसलिये गदरके पश्चात् हिन्दुस्थानियोंको अपनी बुद्धिके विकासके लिए ब्रिटिश सरकारका छाया-क्षेत्र ढूंढना पड़ा। अंग्रेजी भाषाके ज्ञानसे शासन सम्बन्धी विचारों की सीमा केवल व्यक्ति-शासन तक ही नहीं रह गयी थी। ब्रिटिश-शासनके ढंगके निरालेपनकी वजहसे हिन्दुस्थानियोंके चित्तमें शासन-सुधारकी भावनाएं जागृत होने लगी थीं। अपना शासन नष्ट हो चुका था। उसके स्थानपर हजारों मील-की दूरीपर रहनेवाले, भिन्न वर्ण, भिन्न धर्म, भिन्न व्यवहार लोगोंका नियमबद्ध शासन शुरू हो गया था। इस शासनमें यद्यपि राजपदकी रक्षा की गयी थी, तथापि सत्ताके समस्त सूत्र लोगोंके हाथोंमें थे। इधर राजकर्त्ताओंके घरके शासनकी यह हालत थी उधर हिन्दुस्थानमें पूरी निरंकुश शासन प्रणाली प्रचलित थी।

सम्राज्ञीके राजको बीत कर लगभग ३७ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस अवसरमें ब्रिटिश शासकोंकी कार्य-शैलीसे लोग पूरी तरह परिचित हो गये थे। 'लोगोंकी भलाई' के लिये किये जानेवाले राज्यके कडुयेफल लोग चख रहे थे। उस समय वह पीढ़ी वृद्ध हो चुकी थी जो गदरके समय मौजूद थी। उसके स्थानपर अंग्रेजी शासनमें पली हुई किन्तु स्वाभिमान और स्वराज्यकी उज्वलभावना हृदयमें रखनेवाली पीढ़ी विद्यमान थी। उस समयका स्वराज्य 'प्रातिनिधिक स्वराज्य' नहीं था!

अपनों द्वारा राज चलाया जाना ही उस समय स्वराज्य समझा जाता था ।

जब लोगोंने देखा कि ३७ सालकी अवधिमें शासकोंने उनकी कुछ भी क़द्र नहीं की, तब उनके चित्तमें असन्तोष उत्पन्न होने लगा। इधर नौकरशाही-शासनके अधिकारी जनतासे अलग रहने लगे। कम्पनीके समयके अंग्रेज अधिकारी लोगोंसे मिल जुलकर रहते थे और उनके सुख दुःखकी पूरी जानकारी प्राप्त कर लेते थे। कम्पनीके पिछले अधिकारी, लोगोंसे मिलना पसन्द नहीं करते थे, जिसका परिणाम यह होने लगा कि जनताके विचारोंसे सरकारी अधिकारी बिलकुल अपरिचित रहने लगे। १८५७ के बलवेका कड़ुआ—अनुभव मिलनेपर भी नौकरशाहीके अधिकारियोंमें कम्पनी शासनके समयकी हिन्दुस्थानियोंसे अलग रहनेकी प्रवृत्ति आही गयी। इधर कम्पनीके राजमें मिलनेवाले सुख-साधनोंकी भी कमी होती चली जा रही थी। जनताका सैनिक जीवन नष्ट होता चला जा रहा था। जहां सन् १८५८ में एक अंग्रेज सैनिकके लिये ५ हिन्दुस्थानी सैनिक रखे जाते थे वहां सन १८८५ में एक अंग्रेज सैनिकके लिये केवल २ हिन्दुस्थानी सैनिक रखे जाने लगे। इधर खर्चका कोई ठिकाना न रहा। लगभग २०॥ करोड़ रुपये फौजी शासनपर खर्च होने लगे। सरकारी नौकरियोंकी बड़ी तनख़्वाह वाली सब जगहें यूरोपियनोंको मिलती थीं और देशका शासन करनेके लिए कानून बनानेवाली जमातमें हिन्दुस्थानियोंकी ज़रा भी पूछ नहीं थी।

इन अपमानजनक बातोंको देखकर प्रत्येक प्रान्तके लोग मन मन कुढ़ा करते थे, किन्तु भाषा, भाव, और राजनैतिक आदर्शों-की तत्कालीन भिन्नताके कारण उनके प्रयत्न वैयक्तिक हुआ करते थे। धीरे धीरे यह प्रान्तीय भाव नष्ट होने लगा। एक ही रोलरके नीचे दबाये जानेके कारण, भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें पर-

इनमें जो कुछ बातें लिखी हुई थीं वे इस आशयकी थीं :— गरीब लोग वर्त्तमान शासनसे निराश हो गये थे। उनका विश्वास हो चला था कि भूखसे व्याकुल होकर उनकी मृत्यु हो जायगी। अतएव उन्हें 'कुछ करना चाहिए।' ये सब लोग मिलकर 'कुछ करनेवाले थे।' इस 'कुछ' का मतलब अत्याचार और साहसपूर्ण कार्य थे। कई पत्रोंमें उल्लेख था कि पुरानी तलवारें, भाले, तोड़ेदार बन्दूकें समयपर काममें लायी जानेके लिए छिपा कर रखी गयी हैं। यद्यपि इन बातोंसे एकदम बलवा होनेकी सम्भावना नहीं थी तथापि पहिले व्यक्तिगत जुर्म, तिरस्कार किये गये। लोगोंके खून, बङ्कोंकी चोरी, बाजारोंकी डकैतियां आदि गुनाहोंसे आरम्भ होकर अन्तमें भयङ्कर कांण्ड उपस्थित होनेकी सम्भावना दीखती थी नीची श्रेणीके भूखे लोगोंकी हालत देखते भय होता था कि आरम्भमें किये गये अल्प अपराध आगे चलकर सैकड़ों गुनाहों और अराजकताका कारण बनेंगे और सरकारी अधिकारी तथा प्रतिष्ठित जनता पर भयङ्कर सङ्कट आयेगा। यह भी संभावना दीखती थी कि छोटे दीखनेवाले ये संघ पानीकी बूंदोंकी तरह मिलकर एक हो जायंगे और सरकारका विरोध करनेवाले कुछ शिक्षा प्राप्त लोग भी अपने जीवनकी परवा न करके इसमें सम्मिलित हो जायंगे। इनके नेतृत्वमें यह स्फोट एकताका रूप धारण करेगा और उसको 'राष्ट्रीय बलवे' का स्वरूप प्राप्त हो जायगा।"

इसी तरहके विचार उस समयके कई लोगोंके दिलमें उठ रहे थे। लार्ड रिपनका कार्यकाल समाप्त होकर लार्ड डफरिन हिन्दुस्थानके वाइसराय होकर आये थे। मि० ह्यूमने उनसे भी इस सम्बन्धमें सलाह कर ली थी और लार्ड डफरिनने भी उस समयकी हालतका विचार करके कांग्रेस स्थापनाके आन्दोलनके साथ अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की थी।

इस तरह विचार विनियम होनेके पश्चात् कांग्रेस-अधिवेशन

के लिये राजनैतिक आन्दोलनमें बढ़ा हुआ पूना पसन्द किया गया। किन्तु पूनेमें उस समय हैजेका प्रकोप था इस लिये बम्बई की 'प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन' नामकी संस्थाने कांग्रेसको बम्बईमें निमन्त्रित किया। सर फीरोजशाह मेहता, पं० काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग और श्री डी० ए० वाचा, उक्त एसोसिएशनके उत्साही मन्त्री थे। यह संस्था लोकमत प्रकट करनेके लिए ही स्थापित की गयी थी। अतएव यही संस्था कांग्रेसके रूपमें परिणत कर दी गयी।

कांग्रेसका विकास।

पहली कांग्रेस सन १८८५ के सितम्बर मासके अन्तिम सप्ताहमें बम्बईमें हुई। बंगालके श्री० डब्लू सी० बोनरजी उसके सभापति बनाये गये। भिन्न भिन्न प्रान्तोंसे ७२ प्रतिनिधि उस कांग्रेसमें सम्मिलित हुए थे। उक्त कांग्रेसको आजके एंग्लो इण्डियन समाजके पुरखोंने 'विद्रोही' संस्थाके नामसे बदनाम करना शुरू कर दिया था। और यह 'विद्रोही' संस्था किस उद्देश्यसे क़ायम हुई थी। मि० बोनरजीके शब्दोंमें सुनिये:—

(१) साम्राज्यके भिन्न भिन्न भागोंमें रहनेवाले हमारे देशके हितचिन्तकोंकी व्यक्तिगत मित्रता बढ़ाई जाय।

(२) देशके प्रेमियोंमें, प्रत्यक्ष मेल मुलाक़ात बढ़ाकर, जाति, धर्म, या प्रान्तिकताके विचार हटाये जांय और प्यारे लार्ड रिपनके संस्मरणीय शासनके उत्पन्न होनेवाले राष्ट्रीय एकताके इन भावोंकी वृद्धि तथा जमावट की जाय।

(३) वर्तमान सामाजिक प्रश्नोंके विषयमें लोगोंके सच्चे विचार प्रगट किये जायँ।

(४) आगामी १३ मासमें 'नेटिव पोलिटिशियन' (भारतीय राजनीतिज्ञों) द्वारा किये जानेवाले सार्वजनिक हितके कार्योंके करनेका ढंग निश्चित किया जाय।"

उस समय कांग्रेसका कोई संगठन नहीं था और न कोई उद्देश्य ही था। वह एक राजनैतिक संस्था थी जिनके द्वारा हम लाग राजकर्ताओंसे बोल सकते थे। बाल्यावस्थामें रहनेके कारण उस समय उसके उद्देश्य और संगठनका बनाना भी सम्भव नहीं था। ये बातें प्रत्येक अग्रगामी संस्थाके विकासके साथ बनती जाती हैं। ऊपर दिये हुए उद्देश्य पहिली कांग्रेसके सभापतिने आक्षेपकोंके उत्तरमें, अपने भाषणमें कहे थे। उस ७२ प्रतिनिधियोंकी संस्थाके बन जानेसे उस समयके लोगोंको अतीव हर्ष हुआ था। सभापतिने अपने भाषणमें कहा था "इतनी महत्वपूर्ण तथा प्रातिनिधिक सभा, गत ऐतिहासिक कालमें भारतभूमिमें कभी भी नहीं हुई थी।" उस समयकी राजनैतिक कठिनाइयोंको देखते कांग्रेसके संचालकोंको इतना हर्ष होना स्वभाविक था। अँग्लो इण्डियन द्वारा उस समय कांग्रेसपर कैसे कैसे आक्षेप किये जाते थे, इस बातका पता सभापतिके इन वाक्योंसे लगता है:—"कई लोग जिन्हें अधिक बुद्धिमानीसे काम लेनेकी जरूरत थी; कांग्रेसको विद्रोहियों और षड़यन्त्रकारियोंका घर बतलाकर उसकी निन्दा करते हैं·······किन्तु स्वयं मैं अपनी ओरसे तथा यहाँ एकत्र हुए सज्जनोंकी ओरसे यह प्रगट करना चाहता हूं कि हमसे अधिक राजभक्त तथा ब्रिटिश सरकारका हित चाहनेवाला कोई नहीं हो सकता।" इस कांग्रेसमें कुल ६ प्रस्ताव पास हुए। इन प्रस्तावोंकी भाषा इस तरह रखी गयी थी कि जिससे उस समयके राजनैतिक प्रश्नोंपर कांग्रेसका मत प्रकट होवे, सरकारको शिफारिस करने या आग्रह करने अथवा राष्ट्रीय अधिकारको दर्शानेवाले भाव उसमें ज़रा भी नहीं था। कानूनी मजलिसोंमें चुने हुए सदस्योंके लिये जाने, सिविल सरविस परीक्षाके इङ्गलैंड तथा हिन्दुस्थानमें साथ साथ लिये जाने, फौजी खर्च घटाने आदि विषय उक्त कांग्रेसमें प्रमुख थे। आज इन बातोंको दोहराते ३५ वर्ष हो गये हैं किन्तु दबाव बिना

न झुकनेवाली नौकरशाहीने इन बातोंमेंसे अधिकतर बातें आज तक नहीं होने दी हैं।

उक्त कांग्रेसमें सरकारी कर्मचारी भी आये थे, किन्तु उन्होंने प्रत्यक्ष रूपसे कार्यमें कोई भाग नहीं लिया था। कांग्रेस संचालकोंने सामाजिक प्रश्नोंको भी राजनीतिके उलझनमें उलझा दिया था। यातो तटस्थ सरकारी कर्मचारियोंने इस उद्देश्यसे सामाजिक प्रश्नोंको कांग्रेसमें घुसेड़ दिया होगा कि अधिकतर लोग न तो आपसी सिर फुड़ौअलसे फुरसत पायेंगे और न राजनैतिक अधिकारोंकी प्राप्तिमें पूरा प्रयत्न कर सकेंगे, या देशके हितचिंतकोंने ही इस ख्यालसे इन बातोंको कांग्रेसमें आने दिया होगा कि राजनैतिक चर्चाको चुभनेवाली छुरी गोरी नौकरशाहीके लिये, सामाजिक चर्चाके मरहमसे कुछ नरम हो जाय और वह उन देशी कर्मचारियोंका विरोध न करे, जो ऊपरसे सरकारी होते हुए भी देशके राजनैतिक आन्दोलनसे पूर्ण सहानुभूति रखते थे। जो हो, सामाजिक प्रश्नोंके विषयमें क ांसके शुरूमें ही जो उल्लेख किया गया उसका परिणाम ठीक न हुआ और धीरे धीरे बहुतसे लोग जिनके दिल कठिनाइयोंके सहनेके लिये, अपवादोंको सुनने के लिए और समय पड़नेपर पूज्यपाद गौरांग प्रभुके, तृतीय नेत्रकी द्वेष ज्वाला सहनेके लिए काफी मजबूत नहीं थे, उन्हें नीचे फिसलनेका मौक़ा मिल गया और देशमें कई दिनों तक 'सामाजिक सुधार पहिले या राजनैतिक सुधार पहिले' इस विषयपर कलहोत्पादक विवाद होता रहा। इस भूलके दुष्परिणामको भारतके राष्ट्रीय जनक स्वर्गीय दादा भाई नौरोजीने-पूर्णतया देख लिया था और इसीलिए दूसरे वर्षकी अर्थात् सन् १८८६ की कलकत्ता कांग्रेसके सभापतिकी हैसियतसे आपने कहा था—

"आज हमलोग एक राजनैतिक संस्थाकी हैसियतसे यहाँ एकत्र हुए हैं। हमलोग राजकर्ताओंको अपने राजनैतिक अख़्तियारोंको बताना चाहते हैं। इस सामाजिक सुधारकी चर्चा यहाँ नहीं

करना चाहते। यदि इनको गौण पद देनेके लिए कोई हमें दोष दे तो 'हौस आफ कामन्सको भी इसीलिए दोष देना चाहिए कि वहां गणितशास्त्र और आत्मज्ञानकी चर्चा नहीं होती।"

समाज सुधार और राजनीतिको एक दूसरेमें सम्मिलित न होने देनेके लिए यद्यपि स्वर्गीय दादाभाईने पूरा प्रयत्न किया था किन्तु उनकी इच्छाएँ सफल न हुईं। कुछ वर्ष बाद कांग्रेसमें सम्मिलित होनेवाले लोगोंने सामाजिक सुधारके प्रस्ताव पास करनेके लिए अलग परिषद् कायम की और उसके द्वारा कांग्रेस से अंशतः सहानुभूति रखनेवाले लोग अलग कर दिये गये।

असल बात यह है कि सामाजिक सुधारके लिए अधिकारों और क़ानूनोंको ज़रूरत रहती है किन्तु परदेशी नौकरशाही इन कानूनोंकी बनावटकी ओर सहानुभूतिकी दृष्टिसे नहीं देखती, क्योंकि उसे हिन्दुस्थानी समाजके सुधार या बिगाड़की उतनी परवा नहीं थी जितनी अपने राज और अधिकारोंकी रक्षा की थी। अधिकारोंका छापा करना राजनैतिक आंदोलनसे ही हो सकता है और राजनैतिक अधिकारोंके बाद समाज-सुधारके मनमाने काम किये जा सकते हैं। पर नौकरशाहीको यह इष्ट न था। कुछ सरकारी हिन्दुस्थानी नौकर —जो कांग्रेस से सहानुभूति रखते थे, जिनमें आंदोलन पैदा करनेकी शक्ति थी, जिन्हें कुछ उलट पुलट करके नाम कमानेकी इच्छा थी,—किन्तु जिनमें सरकारी नौकरीकी चांदीकी बेड़ी तोड़नेके लिए आवश्यक स्वार्थत्याग न था, वे लोग भी सामाजिक सुधार आंदोलनसे सहानुभूति— केवल शाब्दिक नहीं, क्रियात्मक रखते थे। सामाजिक परिषद्के बहानेसे उन्हें कांग्रेस देखनेका भी मौका मिल जाता था और सरकारकी नाराज़ आंखोंमें धूल डालकर वे कह सकते थे कि 'वाह' हम तो सामाजिक सुधार परिषद्के लिए गये थे, कांग्रेससे हमें क्या मतलब।

इन देशका कुछ सुधार अवश्य हुआ, पर राजनैतिक गतिमें

शिथिलता पैदा हो गयी। पत्थरको टूक टूक करनेकी शक्ति रखनेवाले प्रचण्ड प्रवाह नालियोंमें विभक्त हो गया। पर फिर भी नौकरशाहीको धन्यवाद देना चाहिए कि उसने अपने दमनसे लोगोंकी राजनैतिक आग बुझने नहीं दी।

ऊपर कहा जा चुका है कि पहिले वर्षमें अर्थात् सन १८८५ में सिर्फ ७२ प्रतिनिधि कांग्रेसमें उपस्थित हुए थे। दूसरे वर्ष यह संख्या बढ़कर ४३४ हो गयी। तीसरे वर्ष ६०७ प्रतिनिधि इसमें सम्मिलित हुए। चौथे वर्ष १२४८ प्रतिनिधियोंने इसमें भाग लिया और सन १८८९ में अर्थात् पांचवें वर्ष, १७७९ प्रतिनिधि कांग्रेसमें आये। पहिले वर्षकी झिझक धीरे धीरे दूर होने लगी। लेक्चरबाज़ीके तूफानोंसे बिगड़े दिल, सशस्त्र प्रतिकार करनेकी इच्छा रखनेवाले लोग भी कांग्रेसको अपने उद्देश्योंकी पूर्ति करनेके लिये कार्यक्षम समझने लगे। चौथे और पांचवे वर्ष में मि० जार्ज यूल और सर विलियम वेडरबर्न सभापति हुए थे। इस अंग्रेज़ी सहायताने भी, पूर्ण विश्वास न रखनेवालोंके नाज़ुक दिलमें कांग्रेसमें जानेके लिए गुदगुदी पैदा करदी। आगेके सालोंमें प्रतिनिधियोंकी संख्या कम हो गयी। इसके अन्य कारणोंके साथ साथ, शायद एक कारण यह भी रहा होगा कि सभापतिका पद किसी अंग्रेज़को नहीं मिला था। क्योंकि आगे सन १८९४ में सर आलफ्रेड वेबके सभापतित्वमें ११६३ प्रतिनिधि एकत्र हुए थे, सन १९०४ के सर हेनरी काटनके सभापतित्वमें १००० प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। सन १८९० से लगाकर १९०४ तक १५ वर्षोंमें सिर्फ एक साल अर्थात् १८९५ सुरेन्द्रनाथ बैनरजी सभापति थे—छोड़कर एक भी वर्ष जब जब हिन्दुस्थानी सभापति रहा, सौ से बढ़कर प्रतिनिधि कांग्रेसमें सम्मिलित नहीं हुए। इसका कारण हिन्दुस्थानियोंकी आत्म-वेदना परदेशियोंके स्वागतकी स्वाभाविक इच्छा, जनताकी कमज़ोर और दुरंगी आवाज़ पर अविकास आदि कई हो सकते हैं, पर यह

बात सोचनेके लिए काफी सामग्री चाहिये।

प्रतिनिधियोंके उतार चढ़ावका कांग्रेसकी मांग और कार्य क्षमतापर कुछ भी असर नहीं पड़ता था। वह प्रार्थनाके प्रस्तावोंमें नाराज़गी और रूठनेकी बातें कहती जाती थी। इधर सरकारी नौकरशाहीको उसकी ज़रा भी पर्वाह नहीं थी। प्रस्ताव पास करके कांग्रेस सरकारी अफसरोंके पास भेजती थी, सरकारी अफसर उन प्रस्तावोंके उत्तरमें ज्ञातिका उत्तर दे देते और उसे शामिल मिसल कर देते। शिक्षा प्रचारके प्रस्तावोंसे लेकर कौंसिल सुधारके प्रस्तावों तक हर तरहके प्रस्ताव पास किये जाते थे। उनमें उसी समयके शासन-संगठनका आमूल सुधार करनेकी बात रहती थी। सभापतियोंकी वक्तृताएं अंग्रेजी भाषा-प्रभुत्वका अनुकरण कर रोना, और चिल्लाना इन सभी मार्गोंका अवलम्बन किया करती थीं पर पत्थर दिल नौकरशाही हिन्दुस्थानमें पिघलनेके लिए थोड़े ही थी। कांग्रेसके आरम्भके समय उसके सञ्चालकोंने चाहे जो हेतु* रखा हो, किन्तु जन्मसे लेकर लगभग २५ वर्ष

Indeed, the Principle on which the Indian National Congress is based is that British Rule should be permanent and abiding in India and that given this axiom, it is the duty of educated Indians to edeavour to the best of their power to help their rulers so to Govern the Country as to improve her material prosperity and make the people of all classes and communities happy and prosperous and contented as subjects of the British Empire.———The late Mr. W. C. Bannerjee in his Introuduction to Indian Polition by Mr. Natesan Madras, (1897)

"राष्ट्रीय सभाकी जड़ इस सिद्धान्त पर जमी हुई है कि हिन्दुस्तानमें ब्रिटिश शासन स्थायी रहे। इसलिये प्रत्येक हिन्दुस्थानीका कर्त्तव्य है कि वह अपनी शक्ति भर शाशकोंको

तक वह अपना ध्येय स्थिर न कर सकी। वह यह निश्चय न कर सकी कि कांग्रेस किस हेतुकी पूर्तिके लिए स्थापित की गयी है और हेतु पूर्तिके लिये उसके नियम किस ढंगके होने चाहिए। लोगोंमें राजनैतिक विचारोंका प्रचार हो रहा था। भिन्न भिन्न प्रान्तवाले लोग एक हो रहे थे। सभी चाहते थे कि कांग्रेसके नियम बना दिये जायं। सन १८७७ की मद्रास कांग्रेसमें इस बातकी चर्चा की गयी थी, पर मि० ह्यूमने उसे असामयिक समझकर कोई निश्चय न होने दिया। सन् १८७६ की बम्बई कांग्रेसमें प्रतिनिधियोंकी संख्या, प्रति २ लाखके लिए १ नियत की गयी फिर सन् १८६८ तक कुछ न हुआ। उक्त सालमें लो० तिलकको राजद्रोहकी सज़ामें कारावासका दण्ड दिया गया था। और भी एक दो देशभक्त राज-द्रोहकी सजा पा चुके थे। एंग्लो-इण्डियन समाचार पत्रवाले कहने लगे थे कि हिन्दुस्थानी लोग सन् १८५७ के बलवेका मज़ा भूल गये हैं, इन्हें फिरसे वही मज़ा चखाना चाहिये। उसी सालमें बम्बई प्रान्तमें हिन्दू मुसलमानोंके झगड़े हुए थे जिनमें अधिकारियोंने मुसलमानोंका घोर पक्षपात किया था। इन सभी बातोंके कारण देशके लोगोंकी आंखें कांग्रेसकी ओर लगी हुई थीं। अन्तमें १८६६' की लखनऊ कांग्रेसमें पहिले पहल, कांग्रेसका ध्येय निश्चय किया गया कि वैध मार्गोंसे हिन्दुस्थानी साम्राज्यके लोगोंकी भलाई और हित का प्राप्त करना, राष्ट्रीय सभाका उद्देश्य है।" इसी साल कांग्रेस सञ्चालनके लिए नियम भी बनाये गये। सन १६०० की लाहौर कांग्रेसमें उन पर विचार भी हुआ पर वे १६०६ की कलकत्ता कांग्रेसमें जाकर पास हुए।

सहायता दे कि वे देशकी आर्थिक उन्नति कर सकें और सभी जातियोंके लोगोंको सुखी और सम्पन्न बना सकें; उन्हें बृटिश साम्राज्यकी प्रजा बननेके लिए सन्तुष्ट रख सक।

—डबलू० सी० बनरजी।

कलकत्ता कांग्रेसमें स्वर्गीय दादा भाई नौरोजीने स्वराज्यका शंख फूंका। इसके पूर्व स्वराज्य प्राप्तिका जिक्र करना भी राजद्रोह समझा जाता था। किन्तु, दादा भाईने वह भय नष्ट कर दिया। पर फिर भी, हिन्दुस्थानका अग्र-गामी दल दादा भाईकी ढीली ढाली स्वराज्य घोषणासे सन्तुष्ट न हुआ।

इधर इसी समयमें, लार्ड कर्ज़नसाहब बंगालके लोक-मतको कुचल चुके थे। उनको आन्दोलनकी छुरी हिन्दुस्तानके स्वराज्य-"पार्श्वपर चरन, पर वह दूने जोशसे लह लहाने लगा। सन् १९०७में कांग्रेसको सूरतने निमन्त्रण दिया था। दादाभाईके स्वराज्य-परिभाषासे सन्तुष्ट न होनेवाला दल सूरतमें अपने मनके अनुसार सुधार करनेके लिए एकत्र हुआ और माडरेटके नामसे पहचाने जानेवाला दल—जिसपर उस समय भी और आज भी लोग दोषारोपण किया करते हैं कि सरकारी दल है—अपनी सेना लेकर एकत्र हुआ था। गरम और नरमका भेद तो देशमें १० वर्ष पहिलेसे ही विद्यमान था, किन्तु अभीतक कांग्रेसपर किसीने चढ़ाई न की थी। नरम समझे जानेवाले लोग कांग्रेसके जनक थे। उनकी इच्छाके प्रतिकूल कांग्रेसमें कुछ भी हो नहीं सकता था। इधर गरमदल इन लोगोंकी ढीली चालसे ऊब उठा था। राष्ट्रीय महासभापर अधिकार जमानेके लिए वे अधीर थे पर माडरेट दल जो कांग्रेसका जन्म दाता था उसे अलग होने देना नहीं चाहता था इस झगड़ेका अन्त सूरतमें होने वाला था। कलकत्ता कांग्रेस (१९०६) के समयसे कांग्रेसके प्रति लोगोंकी रुचि फिर बढ़ गयी थी। यह कांग्रेसकी २२ वर्षकी अवस्थामें वह पहिला ही मौका था कि एक हिन्दुस्थानी सभापतिकी आधीनतामें १६६३ प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। कांग्रेसको आजादीकी हवा न लगनेदेनेकी माडरेटोंकी चिन्ताने कांग्रेसको मृतप्राय कर रक्खा था, किन्तु दादाभाईकी कलकत्ता कांग्रेसने उसमें नयी आशाका संचार किया था। सूरतमें वह

राष्ट्रीय दलके हाथमें जानेको था, पर वहाँ नरमों गरमोंका युद्ध मच गया और बेचारी कांग्रेसपर उसके जनकोंने अधिक कड़ा पहरा रख दिया।

सन १६०८में मद्रासमें कांग्रेस हुई। यह केवल माडरेटोंकी ही रह गयी थी, क्योंकि उन्होंने नियम बना दिया था कि कांग्रेस 'क्रीड'(विधान)को माननेवाले लोग ही उसके अन्दर आ सकेंगे। यह 'क्रीड' स्वराज्यके उद्देश्योंका पोषक नहीं था, इसलिए राष्ट्रीय दलने कांग्रेसका बहिष्कार कर दिया था। सूरतकी कांग्रेसमें जहाँ १६०० प्रतिनधि एकत्र हुए थे वहां मद्रासकी कांग्रेसमें सिर्फ़ ६२६ आदमी आये थे। इन को संख्या क्रमशः घटने लगी। सन् १६०६की कांग्रेसमें सिर्फ २४५ प्रतिनिधि आये थे। सन १६१०में एक अंग्रेज़ सज्जन सर विलियम वेडरबर्न सभापतिकी स्थानके लिए बुलाये गये थे—शायद इसी तरीकेसे एक पुराने कांग्रेस-सेवी अंग्रेज़की वजहसे लोग कुछ अधिक एकत्र हा जायेंगे; पर प्रतिनिधियोंकी संख्या ६३६से अधिक न हुई। १६११में ४४६, १६१२में २०७, १६१३में ५५० और १६१४में ७६६ प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। इस समय लोकमान्य तिलक छः वर्षका कारावास सहकर राजनैतिक क्षेत्रमें फिर आगये थे। जर्मनीसे इंग्लैण्डका युद्ध छिड़ चुका था। श्रीमती बीसेण्ट भी राजनैतिक क्षेत्रमें, होम-रूलका आंदोलन लेकर आ चुकी थीं। चर्चा हो रही थी कि राष्ट्रीय दलके लोग कांग्रेसके अन्दर आवें। एकताकी ज़रूरत मालूम होने लगी थी। सन १६१६में लखनऊकी कांग्रेस हुई और संयुक्त-प्रान्तमें देशके दोनों दल, राष्ट्रीय और नरम संयुक्त हो गये।

कांग्रेसका संगठन और ध्येय १६११ में पास हो चुका था। ध्येयका परिवर्तन करते करते सन १६१५ में उसका स्वरूप इस प्रकार हो गया था कि "भारतकी राष्ट्रीय सभाका उद्देश्य, भारत

के लोगोंद्वारा, ब्रिटिश स्वयं शासित उपनिवेशोंकी तरह शासन पद्धति और साम्राज्यमें उनकी बराबरीके अधिकारों और जिम्मेदारियोंका प्राप्त करना है। ये उद्देश्य वैध मार्गोंसे, वर्तमान शासन पद्धतिका सुधार करके, राष्ट्रीय ऐक्यताकी वृद्धि करके, लोगोंमें सार्वजनिक भाव जागृत करके और देशके बौद्धिक,नैतिक आर्थिक तथा औद्योगिक साधनोंका संगठन तथा बिकास करके, सफल किये जायं।" यह लम्बा चौड़ा उद्देश्य यद्यपि राष्ट्रीय दलको पूरी तरह पसन्द नहीं था तथापि सामयिक आवश्यकताको देखकर समझौता कर लिया गया और देशके दोनों दल एकत्र हो गये। राष्ट्रीय दलके मिलते ही कांग्रेसकी सूरत बदल गयी। उसमें फिर जीवनका संचार हो गया।

सन १९१६ की लखनऊ कांग्रेस तक हिन्दुस्थानके मुसलमान लोगोंका ज्यादातर हिस्सा कांग्रेसकी ओरसे उदासीन रहा करता था। सन १९०५ और उसके पश्चात् चार छै सालतक तो मुसलमान जनता नौकरशाहीमें पूरी तरह मिल चुकी थी। बङ्गालके एक.गवरनर—सर बामफाइड फुलर मुसलमानोंको अपनी प्यारी बीबी कह चुके थे। वे मुसलमानोंको समझाते थे कि हिन्दुओंसे अलग रहनेमें ही उनका हित है। अपना कार्य संचालन करने और प्रतिनिधित्व दर्शानेके लिये मुसलमानोंने कांग्रेससे भिन्न मुस्लिम लीग नामकी संस्था भी कायम कर ली थी जो अबतक है पर अब उसके उद्देश्य कांग्रेससे मिलते हैं किन्तु सन् १९१६ की कांग्रेसमें वह बात न रही। उसमें नरम-गरमोंके साथ साथ हिन्दू-मुसलमान भी एक हो गये थे। यूरोपीय महायुद्ध शुरू हो चुका था। टर्की और अँग्रेजोंका भी मनमुटाव हो चुका था। ऐसी अवस्थामें मुसलमानोंको अपनी भूल मालूम हुई और उन्होंने कांग्रेसमें अधिक भाग लेना शुरू किया। सन् १९१६ के अक्टूबर मासमें उस समयकी लेजिस्लेटिव कौन्सिलके मेम्बरोंने देशकी मांगोंका एक खरीता तैयार किया

था। इसी वर्षकी लखनऊ कांग्रेसने—जहां हिन्दू मुसलमान दोनों कांग्रेसको अपनी समझने लगे थे—एक अपनी स्कीम प्रकाशित की थी जो कांग्रेस-मुस्लिम स्कीमके नामसे प्रसिद्ध हुई। इस स्कीमके बाद सन् १६१७ की २० वीं अगस्तको सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया (भारतमन्त्री) ने पार्लिमेण्टमें घोषणा की कि 'हिन्दुस्थानको "उत्तरदायी शासनपद्धति" देना हमारा ध्येय है।' लड़ाईकी हालत इस समय बहुत नाजुक हो रही थी। जर्मनीके फौजने सभी लड़नेवालोंके दांत खट्टे कर दिये थे। ऐसी हालतमें हिन्दुस्थानके धन और जन सहायतापर ही इंग्लैंण्डके भविष्यका बहुत बड़ा अंश अवलम्बित था। मि० लायड जार्ज उस समय इंग्लैण्डके प्रधान मन्त्री हो चुके थे। उनकी तीक्ष्ण बुद्धिने इन कठिनाइयोंका पूरा (अनुमान) कर लिया था। इसी अवसरमें लो० तिलक महाराज कांग्रेसके प्रतिनिधि बन कर विलायत गये। उन्होंने वहां जाकर हिन्दुस्थानकी जागृति और भारतीयोंकी आकांक्षाओंका परिचय वहांकी जनताको कराया और मजदूरदलकी सहानुभूति प्राप्त की। सन् १६१८ में मांटेगू-चेम्सफर्ड स्कीम (नया शासन सुधार) प्रकाशित हुई जिसकी वजहसे देशमें सन्तोषकी मात्रा बढ़ी। लोगोंको खयाल हुआ कि अब स्वराज्य मिलने ही वाला है। दिल्लीकी सन् १६१८ कांग्रेस इसी विषयपर विचार करते करते बीती। इसी अवसरमें लार्ड चेम्सफर्ड साहबको रौलेट एक्टकी सूझी। देशको आशा थी कि जिस निस्स्वार्थ भावसे उसने इंग्लैण्डका साथ दिया था, उसके बदलेमें वास्तवमें उसे कुछ मिलनेवाला है; पर कुछ न हुआ। सभी गैर सरकारी सदस्योंके एकमत होकर घोर विरोध करनेपर भी लार्ड चेम्सफर्डने रौलट एक्ट पास करा ही डाला। जिसका परिणामस्वरूप सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ और जालियांवाला बागके कत्लकी घटना हुई, जो हमारे हृदयपर सदाके लिये अंकित हो गई है।

सन् १९१९ में शाही घोषणा द्वारा वही पुरानी बातें दुहराई गयीं, किन्तु उनमें पंजाबके दुखी कुटुम्बोंके लिए एक भी अक्षर नहीं लिखा गया था। इसलिए सन् १९१९ की अमृतसर कांग्रेस में रौलट एक्ट और पंजाबी डायर शाहीकी करतूतोंका ही विशेष रूपसे ज़िक्र रहा। लोकमत इस समय बहुत उत्तेजित हो उठा था। यूरोपीय युद्ध खतम हो गया था। भारतकी सहायता से इङ्गलैंड उसमें विजयी हो चुका था। अब उसे दुश्मनका भय नहीं था; इसीलिए ब्रिटेनके अधिकारियोंके दिलमें भी परिवर्तन हो गया था। अब उन्हें हिन्दुस्थानियोंकी ज़रूरत न थी और इसीलिए वे उनकी इज्ज़त भी नहीं करते थे। लड़ाईके समयकी सब बातें केवल प्रलोभनोंकी तरह मालूम होने लगी थीं, कांग्रेसने जलियांवाले काण्डकी जांचके लिए अपना एक कमीशन नियुक्त किया। सरकारने भी हण्टर कमेटीका कमीशन नियुक्त किया। सरकारी कमीशनने भी स्वीकार कर लिया कि वास्तवमें फ़ौजी क़ानूनके ज़मानेमें पंजाबमें बहुत अत्याचार किये गये, पर इन अत्याचारोंके कर्ताओंको डायर, ओडायर आदि लोगोंको कोई सज़ा न मिली। इस प्रपंचसे जनता और उत्तेजित हो उठी उसे मालूम हो गया कि ब्रिटिश जातिकी कुटिल नीति उसे कभी सिर ऊंचा न करने देगी। अंतमें निरुपाय होकर महात्मा गांधीकी बात लोगोंको पसन्द आई। सितम्बर सन् १९२० की कलकत्तामें की गयी विशेष कांग्रेसने बहुत बहस और विचारके बाद अन्य कोई उपाय न देख, असहयोगके सिद्धान्तको स्वीकृत कर लिया।

इङ्गलैंडके साम्राज्यमें कानडा, न्यूफाउण्डलैण्ड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिण अफ्रीका, हिन्दुस्थान आदि मिला कर १ करोड़ २७ लाख ५५ हज़ार ४७४ वर्ग मील भूमि है और इसमें लग भग ४४ करोड़ आदमी बसते हैं। इन सब देशोंसे हिन्दुस्थानका आकार और जन संख्याका हिसाब सबसे बड़ा है। हिन्दुस्थानको छोड़कर शेष सभी उपनिवेश या राष्ट्र संघ

कहलाते हैं। विशालकाय हिन्दुस्थान ही अकेला ऐसा है जो अवलम्बित राज्य कहलाता है। हिन्दुस्थानमें ब्रिटिशोंको राज्य करते करते १५० वर्षसे ऊपर हो गये। इनके राज्य-कालमें कानूनी मजलिसोंकी खूब चर्चा रही; कई बार शासन सुधार कानून भी पास हुए, पर प्रातिनिधिक या ज़िम्मेदार शासन प्रजाको प्राप्त न हुआ। फौजी खर्च खूब बढ़ा, पर उसमें कोई हिन्दुस्थानी १ हजार रुपयेकी तनख्वाहतक न पहुंचने पाया। हिन्दुस्थानी फौजका उपयोग हिन्दुस्थानकी रक्षाको अपेक्षा साम्राज्य की लड़ाइयां लड़नेकी ओर अधिक किया गया; पर फिर भी साम्राज्यमें हिन्दुस्थानको 'अवलम्बित' राज्यसे अधिक ऊंचा पद प्राप्त न हुआ। जिस ढंगसे राज्य चलाया गया उसका लोगोंने एक ही अर्थ निकाला। इङ्गलैंडकी भलाईके लिए हिन्दुस्थानका राज्य चलाया जा रहा है, यद्यपि बड़े बड़े अंग्रेज़ कह चुके हैं कि "हिन्दुस्थान परमेश्वरकी एक पवित्र धरोहर है" हिन्दुस्थानियोंको भी ब्रिटिश साम्राज्यके अन्य राष्ट्रोंकी तरह मनुष्यताके प्राकृतिक अधिकार मिलने चाहिए।

सरकारकी इस नीतिने भारतीयोंकी आंखें खोल दीं सन् १९२०की कांग्रेसने अपने नियम दुरुस्त किये। वह लगभग एक करोड़ स्त्री-पुरुषोंकी संस्था बनाई गई और भारतकी सच्ची प्रतिनिधि बन गई। पर सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन है नया ध्येय। लगभग २० हज़ार प्रतिनिधियोंने नागपुरमें एकत्र हो कांग्रेसका यह ध्येय निश्चित किया। सभी उचित और शान्ति पूर्वक साधनोंसे स्वराज्य प्राप्त करना।

यह नया ध्येय इंगलैण्ड और भारतीय जातिके पारस्परिक सम्बन्धोंके इतिहासमें नितान्त महत्वपूर्ण है। अबतक भारतवासी यद्यपि नौकरशाही से तंग आ गये थे पर वे ब्रिटिश जातिकी न्याय-परतापर विश्वास करते थे। अतएव ब्रिटिश साम्राज्यमें पृथक् होनेका उन्होंने कभी स्वप्नमें भी विचार न किया था।

पर लायडजार्जने मुसलमानोंको तुर्कोंके सम्बन्धमें दिये हुये अपने बचनको भंगकर और पार्लमेण्टने जालियांवाला बागके हत्याकाण्डका समर्थन कर सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश जाति भारतकी सहकारिताको तुच्छ समझती है। अतएव कांग्रेसके नये ध्येयसे उत्तरदायित्व पूर्ण "शासन" शब्द निकाल दिया गया और उसके स्थानपर "स्वराज्य" शब्द रखा गया। पिछले महीनोंमें अनेक विद्वान इस शब्दकी व्याख्या करनेमें सर पचाते रहे हैं। हमारी समझमें स्वराज्य प्रत्येक जातिका शासन सम्बन्धी प्रारम्भिक हक़ है स्वराज्य-प्राप्त जाति चाहे किसी बड़े साम्राज्यके अन्तर्गत रहे। चाहे अनियंत्रित शासन व्यवस्था क़ायम करे और चाहे प्रजातंत्रकी घोषणा कर दे। भारतीय जातिने स्वराज्यको अपना ध्येय बनाकर गत वर्ष संसारके प्रति घोषित कर दिया कि अपनी शासन व्यवस्थाके निश्चय करनेमें अब वह स्वाधीन होना चाहती है।

अबतक कांग्रेस व्यवस्थाबद्ध आंदोलन करती आ रही थी। व्यवस्थाबद्ध आंदोलनका अर्थ है प्रचलित शासन प्रणाली के अस्तित्वकी रक्षा करते हुए आंदोलन करना। जिस शासन प्रणालीने भारतीय हितोंकी कभी परवा नहीं की उसके अस्तित्वकी चिन्ता करना या तो अभाव है या मूर्खता। सन १९२० के कांग्रेसके प्रतिनिधि न तो कायर थे और न मूर्ख। उन्होंने साधनाके साथ साधनोंको भी बदल दिया। वे न्यायकी सुदृढ़ भित्तिपर रखे गये। भारतवासी जिन कौन्सिलोंको भूल भुलैया समझते हैं, उनमें न जावेंगे; उपाधियोंकी मृगतृष्णा समझ उनके पीछे न दौड़ेंगे, ब्रिटिश अदालतोंको दूकान समझ अब उनमें न्याय खरीदने न जावेंगे; सरकारी शालाओंमें अपने बच्चोंको देके अपनी मानसिक गुलामीको पुष्ट न करेंगे और सेनामें भरती हो पद-दलित राष्ट्रोंके गलेमें गुलामीको तौक़ पहिनानेके लिए विदेश न जावेंगे। वे अपनी प्रत्येक दुर्बलताको दूरकर पवित्र और सशक्त

करेंगे। यदि नौकरशाहीमें न्यायकी गन्ध है, तो उसे इन साधनोंसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे न्याय पूर्ण हैं और अहिंसात्मक। अहिंसाको आलिङ्गन कर भारतने यह पूर्णतया प्रदर्शित कर दिया है कि वह इङ्गलैंडके आदर्शों की गुलामीसे भी अपनेको मुक्त करना चाहता है। शासक और उनके सिपाहियोंका एक बिन्दु भी रक्त न गिरे और शासनमें पूर्ण परिवर्तन हो जाये। ध्येय जितना नैसर्गिक है साधन उतने ही अलौकिक।

विगत बारह महीनोंमें इन साधनोंने नौकरशाहीकी जड़ोंको हिला दिया है, पर ब्रिटिश जाति अब भी कुछ कर सकती है। वह कांग्रेसके पिछले इतिहासके घटना क्रमपर विचार करे।

सन १८८६ में ७२ प्रतिनिधियों द्वारा हिन्दुस्थानियोंमें परस्पर मेल जोल बढ़ाने और अधिकारियोंके कानोंतक जनताकी शिकायतें पहुँचानेके लिए स्थापित की गयी कांग्रेस ३५ सालमें इतनी बढ़ गयी कि उसमें २० हजार प्रतिनिधि सम्मिलित होने लगे और उसका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति हो गया। यह विकास जादूकी लकड़ीके छू जानेसे नहीं हुआ; किन्तु शासकोंकी लापरवाही का यह बिलकुल स्वाभाविक परिणाम हुआ है।

संसारमें घटनाओं और कारणोंका परस्पर सम्बन्ध लगा हुआ है। चाहे अल्पकालकी अवधिमें हम इस कार्य-कारण परम्पराका होना न जान सकें, पर शताब्दि या अर्ध शताब्दिके समयपर दृष्टिक्षेप करनेसे मालूम होता है कि सभी घटनाएँ, एकके बाद एक· किसी न किसी वजहसे ही होती चली आई हैं। बुद्धिमान राजनीतिज्ञ वही है जो इन कारणोंपर कुठाराघात करता है। जड़को न काटते बुराईके पत्तोंको जो छांटता जाता है वह नई घटनाओंके लिये नये कारण उपस्थित करता जाता है।

परमेश्वर देशके शासकोंको बुद्धि देवे कि वे नई घटनाओंके लिए और कोई नया कारण उपस्थित न होने दें; यदि उन्होंने होने

लिया, तो आश्चर्य नहीं कि सन् १९२१ की अहमदाबाद कांग्रेस नागपुरसे एक पैर आगे बढ़कर स्वतन्त्रताकी घोषणा कर दे।

'वन्दे मातरम्,

९ जुलाई १९३२

महावीर प्रसाद पोद्दार द्वारा मुद्रित वणिक प्रेस मिर्जापुर स्ट्रीट कलकत्ता

प्रेमचन्दजीकी रचनायें

"प्रेमचन्द"जी अपनी प्रतिभा, मानव भावोंकी अभिज्ञता वर्णन-पटुता, समाजज्ञान, कल्पनाकौशल तथा भाषा प्रभुत्वके कारण हिन्दीमें अद्वितीय हैं। भिन्न भिन्न भाषाके विद्वानोंने उनकी रचनाओंकी तारीफ की है। उर्दूमें उनकी रचनायें बड़े आदर सम्मानसे देखी जाती हैं। मराठी गुजरातीमें उनके कई ग्रन्थोंके अनुवाद हो चुके हैं। निम्नलिखित पुस्तकें पढ़नेसे 'प्रेमचन्द' जीकी प्रतिभाका चमत्कार मालूम होगा।

सेवासदन—हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध, स्वतंत्र उपन्यास। पतित सुधारका अनोखा मंत्र। मनोरञ्जकताका तो कहना ही क्या। सुन्दर स्वदेशी जिल्द। दूसरा संस्करण मू० २॥) बढ़िया कागज ३)

सप्तसरोज—सात अति मनोहर उपदेशप्रद गल्पें। मू० ॥)

प्रेमपूर्णिमा—१५ नई गल्पें। एकसे एक बढ़कर। सचित्र, मू० २)

नवनिधि—९ ऐतिहासिक गल्पें हैं। मूल्य ॥।=)

वरदान—देशभक्ति पूर्ण उपन्यास। मू० १॥।) सजिल्द २।)

लाल फीता—असहयोग कहानी मू० ~)

महात्मा शेखसादी—मनोरञ्जक उपदेशप्रद जीवन चरित्र, अनूठा भ्रमण वृत्तान्त, विख्यात ग्रन्थ गुलिस्तां और बोस्तांकी उदाहरणों सहित आलोचना। चुनी हुई कहावतें और नीति कथाएं, गज़लें, कसीदे। सादीका सुन्दर चित्र मूल्य ॥) **प्रेमाश्रम**—८०० पृष्ठका उपन्यास। सामयिक भावोंसे भरा हुआ। छप रहा है। **बैंकका दिवाला**—अत्युत्तम कहानी मू० ।) **शान्ति**—नई सभ्यताकी चकाचौंधके बाद सरल जीवनका उदाहरण मू० =)

हिन्दी पुस्तक एजेन्सीमाला

नाम पुस्तक	लेखक	मूल्य
१ सप्तसरोज	"प्रेमचन्द"	॥)
२ महात्मा शेख़सादी	"	॥)
३ विवेकवचनावली	श्रीयशोदानन्दजी अखौरी	।)
४ सेवासदन	"प्रेमचन्द"	२॥)
५ संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ	पं० जनार्दनभट्ट एम० ए०	।=)
६ लोकरहस्य	एक हिन्दी रसिक	॥=)
७ खाद	श्रीमुख्तारसिंह वकील	१)
८ प्रेम-पूर्णिमा	"प्रेमचन्द"	२)
९ आरोग्य साधन	महात्मा गान्धी	।-)
१० भारतकी साम्पत्तिक अवस्था	प्रो० राधाकृष्ण झा एम० ए०	३॥)
११ भाव चित्रावली (१०० अनोखे चित्र)	धीरेन्द्रनाथ गङ्गोपाध्याय	४)
१२ राम बादशाहके छः हुकमनामे	स्वा० रामतीर्थ	।)
१३ मैं नीरोग हूं या रोगी?	"एक लाभप्राप्त"	।)
१४ रामकी उपासना	स्वा० रामतीर्थ	।)
शीघ्र प्रकाशित होनेवाली हैं		लगभग
१५ प्रेमाश्रम	"प्रेमचन्द"	३)
१६ बच्चोंकी रक्षा	लूइकूने	।-)
१७ टालस्टायकी कहानियां	'टाल्स्टाय भक्त'	१)
१८ रागिणी (उपन्यास)	वा० म० जोशी एम० ए०	३॥)
१९ तिब्बतमें तीन वर्ष	कावागूची	२)

पुस्तकालय